7098

तित्थयर

जैन भवन

वर्ष ५ अंक ५ : सितम्बर १९८१

बनारसी साड़ी
इण्डियन सिल्क हाउस
कॉलेज स्ट्रीट मार्केट • कलकत्ता-१२

Prakash Trading Company

12 INDIA EXCHANGE PLACE
CALCUTTA-700001

Gram : PEARLMOON Telephone : 22-4110 22-3323

The Bikaner Woollen Mills

Manufacturer and Exporter of Superior Quality
Woollen Yarn/Carpet Yarn and Superior
Quality Handknotted Carpets

Office and Sales Office :

BIKANER WOOLLEN MILLS
Post Box No. 24
Bikaner, Rajasthan
Phones : Off. 3204
Res. 3356

Main Office

4 Mir Bhor Ghat Street
Calcutta-700007
Phone : 33-5969

Branch Office

The Bikaner Woollen Mills
Srinath Katra : Bhadhoi
Phone : 378

तित्थयर

श्रमण संस्कृति मूलक मासिक पत्र

वर्ष ५ : अंक ५

सितम्बर १९८१

□

संपादन

गणेश ललवानो

राजकुमारी बेगानी

□

आजीवन : एक सौ एक

वार्षिक शुल्क : दस रुपये

प्रस्तुत अंक : एक रुपया

□

प्रकाशक

जैन भवन

पी - २५ कलाकार स्ट्रीट

कलकत्ता-७००००७

□

मुद्रक

सुराना प्रिन्टिंग वर्क्स

२०५ रवीन्द्र सरणी

कलकत्ता-७००००७

सूची

जैन चित्रकला १३३

त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र १४४

जैन दर्शन में कर्मवाद [२] १४६

जन पत्र-पत्रिकाएँ : कहाँ/क्या १५६

बाहुबली, प्रभास पाटन

जैन चित्रकला

भारतीय चित्रकला का इतिहास बहुत प्राचीन है। प्राचीन संस्कृत साहित्य के विभिन्न स्थानों में इसका उल्लेख होने पर भी भारतीय चित्रकला का प्रथम यथार्थ निदर्शन हम प्रथम शताब्दी के अजन्ता की बौद्ध गुफाओं में पाते हैं। यहाँ चित्रकला का जो उन्नत और विकसित रूप पाया जाता है, उसे देखते हुए यह निःसन्देह कहा जा सकता है कि भारतीय चित्रकारों ने वे ही प्रथम भित्तिचित्र अंकित नहीं किए हैं, परिणामतः वे उस उत्कर्ष को अधिगत करने में समर्थ हुए जिस उत्कर्ष को हम अजन्ता में पाते हैं। अजन्ता के पूर्व के भित्तिचित्र आज न रहे हों किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि इसके पूर्व कोई भित्तिचित्र अंकित ही नहीं हुआ। हो सकता है तेज धूप, आँधी, और जल के ध्वंशात्मक प्रभाव से भित्ति के लेप शिल्पी की तूलिका रेखा और रंग अपनी रक्षा करने में समर्थ न हो सके हों।

भारतीय चित्रकला की भाँति ही जैन चित्रकला का इतिहास भी अत्यन्त प्राचीन है। क्योंकि जैन चित्रकला भारतीय चित्रकला से पृथक नहीं है। जैन, बौद्ध एवं हिन्दू चित्रकला को मिलाकर ही प्राचीन भारतीय चित्रकला कहा जाता है। अतः भारतीय चित्रकला का निरीक्षण करते समय हमें तीनों का ही निरीक्षण करना पड़ता है। किसी एक को बाद देकर भारतीय चित्रकला का मार्मिक अनुभव करना सम्भव नहीं है।

प्राचीन संस्कृत साहित्य की भाँति ही प्राचीन जैन साहित्य में भी विभिन्न स्थलों पर चित्रकला का उल्लेख मिलता है। जैन श्रुतांग 'नायाधम्मकहा' में धारिणी देवी के शयनागार का जो वर्णन वहाँ दिया गया है उसमें आता है कि उनके कक्ष की छत लता-पल्लवों के सुन्दर चित्रों से अलंकृत थी। इसी ग्रन्थ में अन्यत्र राजकुमार मल्लदीन निर्मित प्रमोदवन में चित्र सभा निर्माण का वर्णन है। मल्लदीन ने चित्रकारों को बुलाकर उन्हें अपने प्रमोदवन में चित्र सभा निर्माण कर उसे हाव-भाव विलास और विभ्रम से सुसज्जित करने को कहा। चित्रकार उनकी आज्ञा स्वीकार कर अपने-अपने घर से रंग, तूलिका आदि लेकर आए और चित्र रचना में संलग्न हो गए। उन्होंने भित्तियों का विभाजन किया, उन पर लेपन किया, तदुपरान्त हावभाव विलास और विभ्रम से परिपूर्ण चित्र अंकन करना प्रारम्भ किया। इन चित्रकारों में एक चित्रकार में ऐसी दक्षता थी कि वह किसी भी नर-नारी एवं पशु के एक

अंग को देखने मात्र से ही उसका पूर्ण हुबहू चित्र अंकित कर सकता था। उसने राजकुमारी मल्ली के पैर का एक अंगूठा देखने मात्र से उनका पूर्ण चित्र बना दिया था। 'बृहत्कल्प भाष्य' में एक गणिका की जीवनकथा है जिसकी चित्र सभा में विभिन्न जातीय नाना व्यावसायिक पुरुषों के चित्र अंकित थे। वह अपने आगन्तुकों को पहले उसी चित्र सभा में ले जाती एवं उसकी प्रतिक्रिया देखकर उसके साथ तदनुरूप व्यवहार करती। किसी भी विषय के अभ्यास से ही उसमें प्रवीणता आती है—आवश्यक टीका में इसकी व्याख्या करते हुए कहा गया है कि निरन्तर अभ्यास द्वारा जिस प्रकार चित्रकार बिना परिमाप किए ही समुचित अवयव आँकने में समर्थ हो जाते हैं उसी प्रकार किसी भी वस्तु पर अभ्यास द्वारा अधिकार प्राप्त किया जा सकता है। चित्रकारों की हस्तकला कौशल का वर्णन करते हुए इस ग्रन्थ में यह भी कहा गया है कि एक शिल्पी ने मयूर का एक ऐसा चित्र अंकित किया कि राजा उसे सचमुच का मयूर समझकर पकड़ने दौड़े।

साहित्य के इन सब उल्लेखों के अतिरिक्त जैन चित्रकला का जो प्रथम निदर्शन हम देख पाते हैं वह भी बौद्ध अजन्ता की भाँति भित्ति चित्र है और अजन्ता के द्वितीय पर्याय के सम-सामयिक है। महेन्द्र वर्मा के राजत्वकाल में खृष्टीय ६२५ में तंजोर के निकटस्थ सित्तन्नवासल की गुफा में ये भित्तिचित्र पहले अंकित हुए थे। शैव धर्म ग्रहण करने के पूर्व महेन्द्र वर्मा जैन धर्मावलम्बी थे। चित्र शिल्प से उनका गहरा अनुराग था। उन्होंने दक्षिण चित्र नामक एक शिल्प शास्त्र का भी संकलन किया था। एक समय इसी की दीवालों पर छतों पर स्तम्भों पर सर्वत्र चित्र अंकित थे। किन्तु आज तो अवशिष्ट है कुछ सामान्य-सा ही। फिर भी जो कुछ है उसी से उस कला का मूल्यांकन किया जा सकता है। आकाश में मेघों के मध्य नृत्यरता अप्सराएँ एवं राजा-रानियों की सुन्दर आकृतियाँ स्पष्ट और दर्शनीय हैं। छत पर पद्मवन के दो चित्र हैं। एक में सरोवर के बीच एक स्त्री और एक पुरुष है। स्त्री के दाहिने हाथ में पद्म फूल है। पुरुष उसके बायें हाथ की ओर कन्धे पर मृणाल लिए खड़ा है। अत्यन्त सुन्दर है वह दृश्य। किसी-किसी का कथन है वह पुरुष स्वयं महेन्द्र वर्मा एवं वह स्त्री उनकी रानी की प्रतिलिपि है। उसी दृश्य के अन्य स्थान पर हाथी की सूंड़ द्वारा मृणाल को उखाड़ फेंकने का चित्र अङ्कित है। कहीं गाएँ चर रही हैं। कहीं हंस मिथुन क्रीड़ारत हैं। कहीं तितलियाँ पराग आहरण के लिए पद्म फूल पर आ बैठी हैं। कहीं मछलियाँ जल में क्रीड़ा कर रही हैं। द्वितीय चित्र भी इसी

के अनुसार है। यहाँ एक पुरुष पद्म पुष्प की नाल लिए खड़ा है। जल में हाथी, गाएँ क्रीड़ामग्न है।

पद्मवन, सित्तन्नवासल

सित्तन्नवासल के चित्रों के विषय में कहा गया है—in grand Ajanta style. किसी किसी के मत में अजन्ता से भी अधिक कलापूर्ण। इसे लेकर कुछ मतभेद हो सकता है फिर भी हमारे देश के कला पिपासुओं का ध्यान सित्तन्नवासल के चित्रों की ओर होना आवश्यक है।

सित्तन्नवासल के छत के द्वितीय चित्र के अनुरूप चित्र मिलता है ऐलोरा के कैलाश मन्दिर में। यद्यपि यह शैव मन्दिर है फिर भी यहाँ एक ऐसा चित्र है जिसकी विषय वस्तु जैन है। इस चित्र में भट्टारक सम्प्रदाय के किसी साधु की शोभा-यात्रा एवं राजद्वार पर उनकी अभ्यर्थना का दृश्य है। इससे

चित्र निर्माता की धार्मिक उदारता और उस पर किसी जैन साधु का व्यक्तिगत प्रभाव की बात स्मरण हो आती है। एलोरा की इन्द्र सभा नामक शैल मन्दिर में जो सब भित्तिचित्र है (खृ० ८-१० शतक) वे इतने छिन्न-भिन्न और विवर्ण हो गए हैं कि उनके विषय में कोई अभिमत व्यक्त करना ही आज सम्भव नहीं है।

खृष्टीय दशम एवं एकादश शताब्दी में जैनों ने दक्षिण भारत के अनेक मन्दिरों में भित्ति चित्र निर्माण कर चित्रकला को यथेष्ट परिपुष्ट किया था। फिर भी प्राकृतिक कारणों एवं वीर शैवों के ध्वंशात्मक कार्यों के परिणाम स्वरूप आज कुछ सामान्य-सा ही अवशिष्ट है। प्रसंगतः तिरूमलाइ के जैन मन्दिर का उल्लेख किया जा सकता है। आकाश के मेघों में उड्डीयमान देवताओं एवं किम्पुरुषों के चित्र तो अत्यन्त ही सुन्दर हैं। पंक्तिबद्ध देवतागण तीर्थङ्कर प्रभु का उपदेश सुनने जा रहे हैं। कोई एक पुष्पवन में खड़ा है। शायद अर्हत् उपासना के लिए पुष्प लेने। एक स्थान पर जैन साधु भिक्षा दानरता स्त्रियों को उपदेश दे रहे हैं। रंग का व्यवहार अजन्ता की भाँति ही है।

श्रवण बेलगोला के जैन मन्दिरों में भी अनेक भित्तिचित्र अङ्कित हैं। एक चित्र में भगवान पार्श्वनाथ उपदेश दे रहे हैं, दूसरे स्थान पर अरिष्टनेमि का चित्र है। वह भी अतीव सुन्दर ढंग से चित्रित हुआ है। अन्यान्य चित्रों के मध्य लेश्यावृक्ष का चित्र भी बड़ा मनोरम है। एक जगह महीशुर राज कृष्णराज उडयर (तृतीय) का दशहरा दरबार चित्रित कर दिखाया गया है।

जैन भित्ति चित्र का अवधिकाल खृष्टीय ग्यारहवीं शताब्दी है। तदुपरांत तालपत्रों पर चित्र अङ्कन प्रारम्भ हुआ। तालपत्रों का समय ११ वीं शताब्दी से १४ वीं एवं १५ वीं शताब्दी तक का है। फिर आया कागज युग। जैन तालपत्रों की पुस्तकें भी हजारों की संख्या में है। इनमें अधिकांश तो उत्तर एवं दक्षिण के जैन शास्त्र भण्डारों में आज भी सुरक्षित हैं। इनमें चित्र साधारणतः लेखन के ऊपर या नीचे दाएँ या बायें या कहीं मध्य में अङ्कित हैं। इनमें अधिकतया अलंकरण या धर्मरुचि अभिवर्द्धित करने के लिए ही है। इस युग में ऐसे चित्र बहुत कम पाए जाते हैं जिनके साथ ग्रन्थ के विषय का सम्बन्ध हो।

जैन तालपत्रीय पुस्तक का जो सबसे प्राचीन निदर्शन पाया जाता है वह है 'निशीथचूर्णि' का। यह पुस्तक पश्चिम भारत के पाटन स्थित संघवी पाड़ा के जैन ज्ञान भण्डार में प्राप्त हुई है। पुस्तक की प्रशस्ति से जाना जाता है

कि यह पुस्तक भृगुकच्छ (भडौंच) के सोलंकी राजा जयसिंह के (खृ० १०९४ -११४३) समय लिखी गयी थी। इसी के समकालीन हैं दक्षिण भारत के मूलविद्री के शास्त्र भण्डारों में सुरक्षित 'षटखण्डागम' की तालपत्रीय पुस्तक। दिगम्बर सम्प्रदाय द्वारा सुरक्षित साहित्य में यह ग्रन्थ सबसे प्राचीन है। मूल ग्रन्थ खृष्टीय द्वितीय शताब्दी का है एवं टीका नवम् शताब्दी की है। 'षटखंडागम' के दूसरे पृष्ठ पर दोनों ओर केवल चित्र ही अङ्कित है। पश्चिम भारतीय चित्र शैली में नाक और चिबुक की कोणाकृत्ति, द्वितीय आँख का मुख के अवयवों के बाहर आँकने की जो पद्धति देखी जाती है यहाँ उसका अभाव है। यहाँ तक कि पाटन के 'निशीथचूर्णि' के चित्र में भी वह विशेषता दिखाई नहीं देती।

खृष्टीय ११२७ में लिखित खम्भात के शान्तिनाथ मन्दिर में स्थित नगीन दास ज्ञान भण्डार में 'ज्ञाताधर्म सूत्र' की तालपत्रीय पुस्तक पर अंकित चौरीवाहक सह महावीर और सरस्वती के त्रिभंग चित्र भी बहुत ही सुन्दर हैं। चतुर्भुज देवी के दोनों ऊपरी हाथों में कमल एवं नीचे के हाथों में अक्षमाला और पुस्तक है। पास ही स्थित है हंस। सरस्वती के मुख की प्रसन्नता और अंग-प्रत्यंग के हाव-भाव एवं विलास अति सुन्दर भाव से अंकित किए गए हैं।

बड़ौदा के अन्तर्गत छानी के जैन भण्डार में 'ओघनिर्युक्ति' की तालपत्रीय पुस्तक (११६१ खृ०) के चित्र एक विशेष कारण से उल्लेखयोग्य हैं। कारण यहाँ जैन १६ विद्यादेवी और अन्यान्य देव-देवी एवं यक्षों के सुन्दर चित्र अङ्कित हैं। विद्यादेवियों के नाम हैं रोहिणी, प्रज्ञप्ति, वज्रशृंखला, वज्रांकुषी, पुरुषदत्ता, काली, महाकाली, गौरी, गन्धारी, महाज्वाला, मानवी, वैराट्या, अच्छुप्ता, मानसी और महामानसी। अन्यान्य देव-देवियों के मध्य कपर्दी यक्ष, सरस्वती, अम्बिका और महालक्ष्मी उल्लेखयोग्य हैं। समस्त देवियां चतुर्भुजी और भद्रासन में उपविष्टा हैं केवल अम्बिका द्विभुजा है। इन सब चित्रों के नाक चिबुक की कोणाकृत्ति और दूसरी आँख मुखावयव के बाहर अङ्कित है।

१२८८ खृष्टाब्द में लिखित, सुबाहुकथादि कथा संग्रह की तालपत्रीय पुस्तक में चित्र है जिनमें नेमिनाथ की वरयात्रा का चित्र तो अत्यन्त ही सुन्दर है। राजीमती विवाह मण्डप में बैठी है। विवाह मण्डप के दरवाजे पर खड़े एक हाथी पर आरूढ़ व्यक्ति नेमिनाथ का स्वागत कर रहा है। नीचे की ओर बाड़े में पशु आबद्ध है। इस पुस्तक में बलदेव मुनि के भी दो चित्र हैं। एक चित्र में मृगादि पशु बलदेव मुनि का उपदेश सुन रहे हैं। दूसरे चित्र में

वे मृगादि पशु वह एक वृक्ष के नीचे खड़े एक रथी से आहार ग्रहण कर रहे हैं। डा० मोतीचन्द्र के मत से तालपत्रीय पुस्तक में वह प्रथम पशु-पक्षी और वृक्ष-पल्लवों का चित्र अंकित हुआ है। इसके अतिरिक्त आँख और कान चिबुकों की कोणाकृति, दूसरी आँख का मुख अवयवों के बाहर होना जैसा कि पश्चिम भारतीय चित्र शैली की विशेष विशिष्टता है उसका विकास सुस्पष्ट रूप से यहीं निरूपित हुआ है।

पश्चिम भारतीय चित्रशैली के नामकरण को लेकर चित्र विशेषज्ञों के मध्य कुछ मतभेद है। नर्मान ब्राऊन ने इसे श्वेताम्बर जैन शैली कहा है।

महावीर प्रव्रज्या, कल्पसूत्र

उनके मत में इस शैली का व्यवहार श्वेताम्बर जैन ग्रन्थों में ही अधिक हुआ है। मुखावयव के बाहर नेत्र आँकने की पद्धति भी उनके मतानुसार इसी सम्प्रदाय में प्रचलित तीर्थङ्कर मूर्त्ति में कृत्रिम नेत्र लगाने की पद्धति से ही उद्भुत है। कुमारस्वामी इसे जैन कला एवं एन० सी० मेहता इसे गुजराती शैली के नाम से अभिहित करते हैं। राय कृष्णदास के मत से इस शैली में भारतीय चित्रकला का अवक्षय दिखाई देता है। अतः उन्होंने उस युग में व्यवहृत भाषानुसार इसे 'अपभ्रंश शैली' कहा है। किन्तु इसके बहुत पहले तिब्बतीय ऐतिहासिक तारानाथ (१६ शतक) ने एक पश्चिमी शैली का

उल्लेख किया है, जिसका औचित्य स्वीकार कर डा० मोतीचन्द्र ने इस शैली को पश्चिम भारतीय शैली कहकर अभिहित किया है। तारानाथ के मत से मारु या मारवाड़ के शृङ्गधर से इस पश्चिमी शैली का उद्भव हुआ है। शृंगधर राजा हर्षवर्द्धन के (६१०-५० खृष्टाब्द) सम सामयिक थे। शृंगधर प्रवर्तित यह शैली क्रमशः नेपाल और कश्मीर में भी विस्तृत हुई। फिर भी पश्चिम भारतीय इस शैली के आज पर्यन्त जितने भी निदर्शन पाए गए हैं उन्हें देखकर यह तो अवश्य ही कहा जा सकता है कि इसका विकास जैन परम्परा के मध्य ही हुआ था और इस दृष्टि से यदि इसे जैन कला कहकर अभिहित किया जाए तो अत्युक्ति नहीं होगी। बाद में इस शैली का व्यवहार

महावीर समवसरण, कल्पसूत्र

पश्चिम भारत के बाहर एवं अन्य सम्प्रदायों में भी देखा गया। कुछ और आगे जाकर इस शैली ने मुगल और राजपूत शैली को जन्म दिया। अतः भारतीय चित्रकला के नाम से जो कला आज विश्व-विख्यात है उसके मूल में है जैन चित्रकला। यह बात विदेशियों ने भी स्वीकार की है।

Style was linear, colour-surface flat, background red or blue ornamentation richly gold, face in profile with nose elongated, chin pointed, and further eye projected. Today the art world knows this the Indian style of painting. Now we know it was originally Jaina style. (Kremser).

जैन चित्रकला का जो वैशिष्ट्य है संक्षेप में वही ऊपर की उद्धृति में बताया गया है। सुनहले रंग का व्यवहार अवश्य ही पारस्य शैली का प्रभाव जात है। परवर्ती काल में तो इस रंग का व्यवहार क्रमशः अधिकाधिक होता गया, वह भी मात्र अलंकारों के लिए ही नहीं देह के रंग के लिए भी। किसी-किसी क्षेत्र में तो पूरी पुस्तक ही सुनहली स्याही से लिखी गयी है या फिर जमीन सुनहली है और ऊपर स्याही से लिखा गया है। इस व्यवहार ने सौन्दर्य के साथ-साथ समग्र पुस्तक में एक अभिजात्य ला दिया है।

अब हम पुनः तालपत्रों की पुस्तक की चर्चा पर ही लौट रहे हैं। ऊपर जिन तालपत्रों की पुस्तकों की चर्चा हुई है वे सब पुस्तकें विषय की दृष्टि से प्रधानतः तीर्थङ्कर, देव-देवी, मुनियों एवं धर्म रक्षकों के आकृति चित्र तक ही सीमित हैं। संयोजन और पृष्ठभूमि की समस्या भी तब चित्रकारों को नहीं थी एवं वे सभी आकृतियाँ हाव-भाव तक ही सीमित थीं। आकृति रेखात्मक होने के कारण त्रिगुणात्मक गंभीरता भी नहीं थी। रंग के प्रयोग भी सीमित थे। कभी जमीन के लिए होता पक्की ईंट का रंग, आकृति के लिए हल्दी या सिन्दूर की भाँति लाल, नीला और श्वेत। कभी-कभी हरे रंग का भी व्यवहार किया जाता था। १३५० से १४५० के मध्य की जितनी ताल-पत्रीय पुस्तकें पायी जाती हैं उनमें आकृति अंकन और अधिक सूक्ष्म एवं कलापूर्ण हुआ है और विषयों में तीर्थङ्करों के जीवन की घटनाओं की प्रधानता अधिक थी, साथ ही रंग की उज्ज्वलता एवं विचित्रता की भी वृद्धि होती गयी थी।

१०५ खृष्टाब्दी में सर्वप्रथम चीन में कागज का आविष्कार हुआ। खृष्टीय १०-११ वीं शताब्दी में अरब देश ने भी कागज बनाना प्रारम्भ किया जो कि वहाँ से भारतवर्ष आने लगा था। जेसलमेर के जैन भण्डार से 'ध्वन्यालोक लोचन' का जो अन्तिम पृष्ठ पाया गया मुनि जिनविजयजी के मतानुसार उसका लेखन काल ११६० खृष्टाब्दी के आस-पास का है। कारंजा जैन भण्डार में सुरक्षित 'रत्न करण्ड श्रावकाचार' की प्रभाचन्द्रकृत टीका सहित जो पुस्तक है उसका समय १३५८ खृष्टाब्दी है। वह पुस्तक वर्तमान में लन्दन की इण्डिया आफिस लाइब्रेरी में सुरक्षित है। इस पुस्तक में ३१ चित्र हैं एवं इसके साथ ही 'कालकाचार्य कथा' के भी १३ चित्र हैं। पुस्तक लाल और काली जमीन पर रुपहली स्याही से मुख्यतः लिखी गयी है। सामान्य अंश लाल या सफेद जमीन पर सुनहली स्याही से लिखा गया है। प्रत्येक पृष्ठ के किनारे-किनारे हाथी या हंस पंक्तियाँ या फूल और पद्मलताएँ

है। लक्ष्मण-गणिकृत 'सुपासनाह चरिय' की एक सचित्र पुस्तक पाटन के हेमचन्द्राचार्य जैन ज्ञान भण्डार में सुरक्षित है। इसका समय १४११ खृष्टाब्द है। इसमें ३७ चित्र हैं। इसके परवर्ती काल की 'कल्पसूत्र' की अनेक पुस्तकें विभिन्न जैन भण्डारों में पायी गयी हैं जिनमें बड़ौदा के नरसिंह ज्ञान भण्डार में रक्षित पुस्तक हुसेन साहब के राज्यकाल में जौनपुर में लिखी गयी थी। पुस्तक सुनहली स्याही लिखित है एवं इसमें आठ चित्र हैं। जिनमें ऋषभदेव का राज्याभिषेक, भरत बाहुबली का युद्ध, त्रिशला का स्वप्न दर्शन, कोशा का नृत्य आदि अंकित है। चित्रों में लाल जमीन पर हल्दीया, हरा, नीला आदि रंगों के अतिरिक्त सुनहले रंग का भी प्रयोग हुआ है। एक और उल्लेखयोग्य पुस्तक अहमदाबाद के देवसेन मोहल्ले में पायी गयी है। कला की दृष्टि से इसके २५-२६ चित्र इस प्रकार के चित्रों में सर्वश्रेष्ठ स्वीकृत किए गए हैं। चित्रों में भरतनाट्यम वर्णित नाना नृत्य मुद्राओं का भी चित्रण हुआ है। एक चित्र में महावीर द्वारा चण्डकौशिक उपशम का दृश्य दिखाया गया है।

कागज की ये समस्त चित्रित पुस्तकें—श्वेताम्बर, जैन सम्प्रदाय की हैं। 'कल्पसूत्र' और 'कालकाचार्यकथा' के एकाधिक चित्र सम्बलित ग्रन्थ प्रकाशित और मुद्रित भी हुए हैं। किन्तु दिगम्बर जैन भण्डारों में रक्षित चित्र पुस्तक आज तक न मुद्रित हुई, न प्रकाशित। उदाहरण स्वरूप दिल्ली के शास्त्र भण्डारमें रक्षित पुष्पदन्तकृत अपभ्रंश 'महापुराण' की कथा को लिया जा सकता है। इस ग्रन्थ में शताधिक चित्र हैं। नागौर के शास्त्र भण्डार में रक्षित 'यशोधर चरित्र' के चित्र भी खूब सुन्दर हैं। नागपुर के शास्त्र भण्डार में रक्षित 'सुगन्धदशमी' की कथा में ७० से भी अधिक चित्र हैं। बम्बई में 'भक्तामर स्तोत्र' की एक सचित्र पुस्तक पाई गई है जिसमें ४० चित्र हैं। नेमिचन्द्र के 'त्रिलोकसार' की सचित्र पुस्तक भी उल्लेखयोग्य हैं।

श्वेताम्बर जैन सम्प्रदाय में भी 'कल्पसूत्र' को छोड़कर ऐसी बहुत सी पुस्तकें हैं जो आज तक प्रकाशित नहीं हुई हैं। 'उत्तराध्ययन सूत्र', 'ज्ञाताधर्म कथा', 'विपाक सूत्र', 'शालिभद्र चरित्र' साहित्य की बहुत सी हस्तलिखित सचित्र पुस्तकें हैं जिनके प्रकाशन से जैन चित्रकला का क्षेत्र ही सम्प्रसारित नहीं होगा भारतीय चित्रकला के इतिहास में एक नूतन अध्याय संयोजित हो जायेगा।

कागज चित्रकलाके माध्यम रूप से गृहीत होने से चित्रांकन शैली का विकास हुआ, परिवर्तन आया। तालपत्रीय युगों के चित्रों में दो या ढाई ईंच से अधिक स्थान नहीं मिलता था। किन्तु अब वह असुविधा नहीं रही। प्रयोजन के अनुसार अब तो कागज की लम्बाई और चौड़ाई को कम या अधिक करना

सम्भव हो गया है। तालपत्र में रंग बैठाना भी कठिन था, किन्तु कागज में यह कार्य भी सहज हो गया है।

कागज के अतिरिक्त काष्ठ और कपड़े पर भी छवि अंकन प्रथा उन दिनों प्रचलित थी। काष्ठ फलक तालपत्र की सुरक्षा के लिए उसके ऊपर और नीचे दिया जाता था। शिल्पी उस पर चित्र अंकित करते थे। एक सचित्र काष्ठ फलक जेसलमेर के ज्ञान भाण्डर से मुनि जिनविजयजी ने पाया था जिसकी लम्बाई-चौड़ाई २७ ईंच × ३ ईंच थी। रंग पक्का था। पानी से भी नहीं मिट सकता था। फलक के मध्य में था एक जैन मन्दिर जिनमें तीर्थङ्कर मूर्त्ति थी। मूर्त्ति के दोनों ओर दो परिचारक थे। दाहिनी ओर के कोष्ठ में दो भक्त अंजलिबद्ध होकर खड़े थे, दो डमरू बजा रहे थे और दो नर्तकियाँ नृत्य कर रही थी एवं आकाश में थी एक किन्नरी। बाँयी ओर के प्रकोष्ठ में तीन उपासक हाथ जोड़े खड़े थे, ऊपर था एक किन्नर। और मध्यवर्ती चित्र के दोनों ओर व्याख्यान सभा थी। एक में आचार्य जिनदत्तसूरि बैठे थे, उनके सम्मुख थे पण्डित जिन रक्षित। व्याख्यान सभा में अन्य उपासक-उपासिकाएँ भी थीं। मुनिश्री के सम्मुख थे स्थापनाचार्य। दाहिनी ओर की व्याख्यान सभा में आचार्य जिनदत्तसूरि गुणचन्द्राचार्य के साथ विचाररत हैं। मुनि जिनविजयजी का अनुमान है कि यह चित्र फलक जिनदत्त-सूरि महाराज के समसामयिक है। जिनदत्तसूरि का समय ११३२-१२११ विक्रमाब्द (१०७६-११५५ खृष्टाब्द) है। मुनि जिनविजयजी ने जेसलमेर के भण्डार से एक और काष्ठ फलक निकाला था, जिसकी लम्बाई-चौड़ाई ३० ईंच × ५ ईंच है। इसमें वादी देवसूरि और आचार्य कुमुदचन्द के मध्य में सुविख्यात वाद का चित्र अंकित है। साराभाई नवाब के संग्रह में भी एक ३० ईंच लम्बा और २$\frac{3}{5}$ ईंच चौड़ा काष्ठ फलक है, जिसमें भरत बाहुबली के मध्य होने वाले युद्ध का वर्णन चित्रित है। १४०० खृष्टाब्द में लिखित 'सूत्र कृतांग' वृत्ति का तालपत्रीय काष्ठ और ३४ ईंच लम्बा और ३ ईंच चौड़ा है। इसमें भगवान महावीर का जीवन चरित्र अंकित है। १३६६ खृष्टाब्द में लिखित 'धर्मोपदेशमाला' का काष्ठ फलक ३५ ईं० ल० और ३ ईं० चौ० है। इसमें भगवान महावीर का जीवनवृत चित्रित है।

कपड़े पर चित्रांकन की पद्धति भी बहुत प्राचीन है। जैन साहित्य में मंख और चित्र व्यवसायियों की कथा है जो कि कपड़े पर चित्र अंकन कर स्थान-स्थान पर प्रदर्शन कर अपनी जीविका निर्वाह करते। किन्तु कपड़े का अंकन अधिक दिनों तक टिक नहीं पाता। अतः प्राचीन निदर्शन आज प्राप्त नहीं

होते। फिर भी १४वीं शताब्दी के अनेक वस्त्र पट बीकानेर में अगरचन्द भँवरलाल नाहटा संग्रहालय में है जिसकी लम्बाई और चौड़ाई १८½ ईंच × १७ ईंच है। इस चित्र पट पर सपरिकर भगवान पार्श्वनाथ का चित्र अंकित है। इसी प्रकार का एक मन्त्र-पट साराभाई नवाब के संग्रहालय में है। ये सब मन्त्र-पट साधारणतः उपासना के लिए तैयार किये जाते थे किन्तु, कला की दृष्टि से भी इनका मूल्यांकन कुछ कम नहीं है।

पश्चिम भारतीय चित्र शैली का राजपूत और मुगल शैली में रूपान्तरित होने के साथ-साथ जैन चित्रकला के इतिहास का अवसान हो गया ऐसा सोचना भूल है। कारण—नूतन चित्र शैली के मध्य से वह प्रवाह प्रवाहित है। हस्तलिखित पुस्तकें चित्रित तथा विभिन्न जैन मन्दिर के लिए चित्रांकनों के अतिरिक्त भी जैन विज्ञप्ति पत्र के माध्यम से जैन चित्रकला की धारा आज भी अनवरत बह रही है। जैन गृहस्थगण आचार्य या साधुओं के चातुर्मास यापन के लिए जो आमंत्रण पत्रिका भेजते थे उसे विज्ञप्ति पत्र कहा जाता है। इन सब विज्ञप्ति पत्रों में मात्र आमन्त्रण ही नहीं रहता, काव्य, साहित्य एवं चित्रकला निदर्शन भी रहता था। तीर्थंकरों के चित्रों के साथ-साथ स्थानीय द्रष्टव्य स्थानोंके चित्र भी रहते थे। बीकानेरके अगरचन्द भँवरलाल नाहटा संग्रहालय में इस प्रकार का एक विज्ञप्ति पत्र है (१८३१ खृ०) जिसकी लम्बाई ७० फुट है। इसे उदयपुर का एक एलबम भी कहा जा सकता है। इसमें तत्कालीन उदयपुर के मन्दिर, मस्जिद, राजबाड़ी, हृद, हाट-बाजार आदि सुन्दर रूप में चित्रित हैं। ऐसा ही एक विज्ञप्ति पत्र है बीकानेर के बड़े उपाश्रय के ज्ञान-भण्डार में। जिसकी लम्बाई १०८ फुट है। अन्य एक विज्ञप्ति पत्र में उस कालिक बीकानेर का चित्र है। प्राचीन कलकत्ता के चित्र के लिए हम युरोपीय शिल्पियों की बातें करते हैं किन्तु हममें से कितने लोग इन सब अनाम शिल्पियों की खबर रखते हैं, जो कि सत्रहवीं शताब्दी से जयपुर, बीकानेर, उदयपुर ऐसे शहरों के वस्तुधर्मी चित्र अंकित कर गए हैं। एकाध नहीं अनेकों विज्ञप्ति पत्र पाए गए है। खोजने पर सिर्फ कलकत्ता में ही १५-२० विज्ञप्ति पत्र की खबर मिल सकती है। बड़ोदा के गायकवाड़ ओरियन्टल सिरिज में प्राचीन विज्ञप्ति पत्रों की एक तालिका भी प्रकाशित हुई थी। प्राचीनतम जो विज्ञप्ति पत्र प्राप्त हुआ है वह १३७४ खृष्टाब्द का है। जैन विज्ञप्ति पत्र चित्रकला के निदर्शन के अतिरिक्त इतिहास की अति मूल्यवान दलील है। इन विज्ञप्ति पत्रों से हम ऐसी घटनाएँ एवं तथ्यों को जान पाते हैं जो इतिहास के पृष्ठों पर नहीं पाए जाते एवं भारतीय इतिहास रचना में जिनका मूल्य असामान्य है।

त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र

श्री हेमचन्द्राचार्य

[पूर्वानुवृत्ति]

ऊपर चौबीस तीर्थंकरों की स्तुति की गयी है। इन्हीं चौबीस तीर्थंकरों के समय ही बारह चक्रवर्ती, नौ अर्द्ध-चक्रवर्ती (वासुदेव), नौ बलदेव और नौ प्रति-वासुदेव हुए हैं। इन सभी ने इसी अवसर्पिणी काल में इसी भरत क्षेत्र में जन्म ग्रहण किया है। इन्हें त्रिषष्टि शलाका पुरुष कहकर अभिहित किया जाता है। इनमें कइयों ने मोक्ष प्राप्त किया है, कई भविष्य में करेंगे। ऐसे ही शलाका पुरुषत्व सम्पन्न महात्माओं के चरित्र का अब मैं वर्णन करूँगा। क्योंकि महात्माओं का चरित्र-कीर्तन कल्याण और मोक्ष प्राप्ति का कारण होता है।

सर्वप्रथम आते हैं भगवान ऋषभ। इन्होंने जिस भव में सम्यक्त्व प्राप्त किया उसी भव से कथा का मैं प्रारम्भ करता हूँ। उसे ही उनका प्रथम भव कहकर उल्लेख करता हूँ।

जम्बूद्वीप नाम का एक वृहद् द्वीप है—जिसके चारों ओर एक के बाद एक असंख्य वलयाकृति समुद्र और द्वीप हैं। जम्बूद्वीप वज्रवेदिका के प्राकार द्वारा वेष्टित और नदी क्षेत्र एवं वर्षधर पर्वत द्वारा सुशोभित है। ठीक इसके मध्य में सुवर्ण और रत्न जड़ित मेरू पर्वत वर्तमान है। मेरू पर्वत को जम्बूद्वीप की नाभि कह सकते हैं।

यह मेरू पर्वत एक लाख योजन ऊँचा और तीन मेखलाओं द्वारा सुशोभित है। प्रथम मेखला में नन्दन वन, द्वितीय मेखला में सोमनस वन और तृतीय मेखला में पाण्डुक वन है। इसकी चूलिका चालीस योजन विस्तृत और बहु जिनालयों से शोभित है।

मेरू पर्वत के पश्चिम में विदेह क्षेत्र है वहाँ क्षितिप्रतिष्ठितपुर नामक एक नगर था। उस नगर को भू-मण्डल का अलंकार स्वरूप कहा जाता था।

उसी नगर में प्रसन्नचन्द्र नामक एक राजा राज्य करते थे। उनका ऐश्वर्य इन्द्र तुल्य था और धर्म कर्म में वे सर्वदा जागृत थे।

उस समय उसी नगर में धन नामक एक श्रेष्ठी रहता था। जिस प्रकार समुद्र सभी नदियों का आश्रय-स्थल है उसी प्रकार वे भी समस्त सम्पत्तियों के आश्रय स्थल थे। उनका यश भी दूर-दूर तक विस्तृत था। उन महत्वाकांक्षी श्रेष्ठी के पास इतना धन था कि उसकी कल्पना करना भी हरेक के लिए

कठिन था। चाँद की चन्द्रिका की भाँति वह धन परोपकार में नियोजित रहता था। कहा जाता है धन श्रेष्ठी रूपी पर्वत से सदाचार रूपी नदी प्रवाहित होकर समस्त पृथ्वी को पवित्र करती थी। वे सबके सेव्य थे। उनमें अपने यशस्वी वृक्ष को अंकुरित करने के लिए गम्भीरता, उदारता और धैर्यरूपी उत्तम बीज थे। उनके गृह में राशि-राशि धान की भाँति रत्न पड़े रहते थे और ढेर के ढेर दिव्य वस्त्र। जिस प्रकार जल-जन्तुओं से जल की शोभा बढ़ती है उसी प्रकार घोड़ा, खच्चर, ऊँट आदि वाहनों से उनके घर की शोभा वृद्धिगत होती रहती थी। देह में जिस तरह प्राण वायु मुख्य होती है उसी प्रकार धनी, गुणी, यशस्वियों में वे भी मुख्य थे। जिस प्रकार महासरोवर के निकट की भूमि झरने के जल से आप्लावित रहती है उसी प्रकार श्रेष्ठी के कर्मचारीगण भी धन और ऐश्वर्य से आप्लावित रहते थे। अर्थात् उनके अधीनस्थ कोई भी दरिद्र नहीं था।

एक दिन श्रेष्ठी ने पण्यद्रव्य लेकर बसन्तपुर जाना स्थिर किया। उस समय वे साक्षात् मूर्त्तिमान उत्साह से लगते थे। उन्होंने समस्त नगर में यह घोषणा करवा दी 'धन श्रेष्ठी बसन्तपुर जा रहे हैं। जिसकी इच्छा हो वे उनके साथ जा सकते हैं। जिसके पास पात्र नहीं है उसे वे पात्र देंगे, जिसके पास वाहन नहीं है उसे वे वाहन देंगे, जिन्हें सहायता की आवश्यकता होगी उन्हें वे सहायता देंगे और जिनके पास पाथेय नहीं है उन्हें वे पाथेय देंगे। यात्रा में चोर, डकैत और हिंस्र पशुओं से उनकी रक्षा करेंगे और जो अशक्त एवं अस्वस्थ होंगे उनकी अपने भाई की तरह सेवा सुश्रूषा करेंगे।'

अनन्तर कुल-बधुओं की कल्याणकारी मांगलिक क्रिया निष्पन्न होते ही वे रथ पर आरोहण कर शुभ-मुहूर्त्त में घर से निकल कर नगर के बाहर आ गए।

यात्रा के पूर्व तूर्य वादन किया गया। तूर्य शब्द को यात्रा का संकेत समझकर जिन्हें बसन्तपुर जाना था वे शहर से बाहर आकर एकत्रित हो गए।

ठीक उसी समय साधुचर्या और पृथ्वी को धर्म से पवित्र करते हुए धर्मघोष आचार्य श्रेष्ठी के पास आकर उपस्थित हुए। उनका मुख सूर्य की भाँति प्रदीप्त था।

उन्हें देखते ही श्रेष्ठी उठ खड़े हुए और विधिपूर्वक हाथ जोड़कर वन्दना करते हुए उनके आगमन का कारण पूछा।

आचार्य बोले—"हम तुम्हारे साथ बसन्तपुर जाएँगे।"

यह सुनते ही श्रेष्ठी ने उत्तर दिया—"भगवन्, मैं आज धन्य हो गया। जिस प्रकार के धर्मात्मा व्यक्ति को साथ लेना आवश्यक था वैसे धर्मात्मा आप स्वयं उपस्थित हो गए। आप सहर्ष मेरे साथ चलें।"

तदुपरान्त उन्होंने रसोइए को बुलाकर कहा—"तुमलोग इनके लिए अन्न-जल सदैव प्रस्तुत रखना।"

आचार्य बोले—"साधु तो केवल वही अन्न-जल ग्रहण करता है जो उसके लिए प्रस्तुत नहीं किया जाता, कराया भी नहीं जाता, करने का संकल्प भी नहीं किया जाता। कूप, वापी और सरोवर का जल अग्नि आदि द्वारा अचित्त न होने तक साधु ग्रहण नहीं करते, जैन शासन का यही विधान है।"

उसी समय किसी ने एक थाल आम श्रेष्ठी के सम्मुख लाकर उपस्थित किया। उन पके हुए आमों का रंग सन्ध्याकालीन सूर्य के रंग में रंगे मेघ की भाँति था।

आनन्दमना श्रेष्ठी ने आचार्य से कहा—"भगवन्, आप इन फलों को ग्रहण कर मुझे कृतार्थ करें।"

आचार्य बोले—"हे श्रद्धावान श्रेष्ठी, इन सचित्त फलों को खाना तो दूर, साधुओं के लिए तो इनका छूना भी निषिद्ध है।"

श्रेष्ठी ने कहा—"आपने बड़ा ही कठोर व्रत ग्रहण किया है। ऐसे कठिन व्रत का पालन करना दुष्कर है। चतुर व्यक्ति भी यदि प्रमादी हो तो एक दिन भी पाल नहीं सकता। फिर भी आप मेरे साथ चलिए। मैं आपको वही आहार दूँगा जो आपके लिए ग्रहणीय होगा।" ऐसा कहकर वन्दना के पश्चात् उसने आचार्य को विदा किया।

ज्वार के समय चंचल उर्मिमालाओं से समुद्र जिस प्रकार अग्रसर होता है श्रेष्ठी भी उसी प्रकार बेगवान अश्व, ऊँट, शकट, बलद सहित अग्रसर हुए। आचार्य भी शिष्य परिवार सहित उनके साथ हो गए। आचार्य सहित शिष्य ऐसे लगते थे जैसे मूलगुण और उत्तरगुण मूर्तिमंत हो गए हैं।

संघ के आगे धन श्रेष्ठी जा रहे थे और पीछे उनके मित्र मणिभद्र एवं दोनों ओर अश्वारोही सेना। उस समय आकाश श्रेष्ठी के श्वेत छत्रों से कहीं शरत्कालीन शुभ्र मेघमालाओं से आच्छादित तो कहीं मयूरपंख के तने हुए छत्रों से वर्षाकालीन मेघमालाओं से आवृत-सा प्रतीत हो रहा था। व्यवसाय के लिए जो पण्य द्रव्य लिए थे ऊँट, बलद, गर्दभ उन्हें इस प्रकार वहन कर रहे थे जैसे घनवात पृथ्वी को वहन करता है।

द्रुतगति के कारण ऊँटों के पैर कब उठते थे और कब भूमि स्पर्श करते

थे समझ ही नहीं पड़ रहा था। लगता था जैसे वे हरिण हैं। खच्चरों की पीठ पर रखे हुए थैले इस प्रकार उछलते थे मानो वे उड़ते हुए पक्षी के डैने हैं।

बड़े-बड़े शकट जिनमें बैठे युवकगण खेल-कूद भी कर सकें जब चलते थे तो लगता था जैसे बड़ी-बड़ी अट्टालिकाएँ ही चल रही हों।

जल वहन कारी वृहद् स्कन्धवाले महिषों को देखकर लगता था जैसे आकाश के मेघ ही पृथ्वी पर उतर आए हैं और पिपासुओं की तृषा निवारण कर रहे हैं।

पण्य द्रव्यों से भरी हुई गाड़ी चलते समय इस प्रकार आवाज करती थी मानों उनके भार से दबकर पृथ्वी ही चित्कार कर रही है।

बलद, ऊँट और घोड़ों के खुरों से उड़ी हुई धूल ने आकाश को दिन में भी इस प्रकार अन्धकारमय बना दिया था जो कि सूई से ही बींधा जा सके।

बलदों के गले में बँधी हुई घण्टियों की आवाज से जैसे दिगमुख भी बधिर-सा हो गया था। चमरी मृग शावक सहित उन शब्दों से भयभीत होकर दूर खड़े उद्ग्रीव से देख रहे थे कि यह शब्द कहाँ से आ रहा है?

अत्यधिक भार वहन करने के कारण ऊँट गण अपनी गर्दन टेढ़ी कर-करके वृक्ष के अग्रभागों को चाट रहे थे।

जिनकी पीठों पर पण्य भरे थैले थे वे गर्दभ कान खड़ा कर, गर्दन सीधी कर चलने के समय एक दूसरे को काटते थे और पीछे रह जाते थे।

अस्त्रधारी रक्षकों के द्वारा परिवेष्टित श्रेष्ठी इस भाँति जा रहे थे जैसे वे बज्र निर्मित पींजड़े में बैठे हों।

मणिधारी सर्पों से जिस प्रकार लोग दूर रहते हैं उसी प्रकार चोर-डकैत भी पण्यवाही उस सार्थ से दूर रहते थे।

श्रेष्ठी धनी-निर्धन सभी का योगक्षेम समान भाव से वहन कर रहे थे एवं सबके साथ इस प्रकार जा रहे थे जैसे हस्तीयूथ के साथ यूथपति हाथी चलता है। सभी आनन्द पुलकित नेत्रों से उनका आदर-सत्कार करते थे। सूर्य की भाँति प्रतिदिन वे आगे से आगे बढ़ते जाते थे।

इस प्रकार जाते-जाते रात्रि को छोटा करने वाला नद, नदी, सरोवर को शुष्क बना देने वाला और पर्यटकों के लिए क्लेशकर भीषण ग्रीष्मकाल आ उपस्थित हुआ। विशाल भट्टी में जलती हुई अग्नि की भाँति असह्य गर्म हवा प्रवाहित होने लगी, सूर्य अंगारे-सी धूप चारों ओर प्रसारित करने लगे। सार्थ ने दोनो पथ के ओर के वृक्षों के नीचे विश्राम ले लेकर आगे बढ़ना

प्रारम्भ किया। जो प्यासे होते वे प्याउ से पानी पी-पीकर वृक्षों के नीचे कुछ देर सो जाते। महिषों की जीभें इस प्रकार बाहर निकलने लगी जैसे निःश्वास ही उन्हें बाहर धक्का दे रही हैं। जो उन्हें चला रहे थे उनकी मार का भी भय न कर वे कीचड़ कादे में उतरने लगे। सारथी के चाबुक से पीटने पर भी उसकी उपेक्षा कर बलद दूरवर्ती वृक्षों की छाया में जाकर खड़े होने लगे। गरम लौह शलाकाओं से जिस प्रकार मोम पिघल जाता है उसी प्रकार सूर्य की उत्तप्त किरणों के स्पर्श से मनुष्यों की देह से स्वेदधारा प्रवाहित होने लगी। पथ की धूल अग्निकुण्ड की राख की भाँति उष्ण हो गयी। सार्थ के साथ जो स्त्रियाँ थीं वे राह में जलाशय देखते ही उसमें उतर कर स्नान करने लगीं और पद्मनाल उखाड़ कर गले में लपेटने लगी। पसीने से उनके परिधान वस्त्र भींगकर इस प्रकार देह से सटे जा रहे थे लगता जैसे अभी-अभी स्नान कर वे गीले वस्त्रों में ही चल रही हैं। मनुष्य ढाक, ताड़, हिंताल, कमल और कदली के पत्रों से हवा कर कर पसीना सुखाने लगे।

ग्रीष्म के पश्चात् ग्रीष्म की ही भाँति पथ के लिए विघ्नकारी वर्षा ऋतु का आविर्भाव हुआ। यक्ष की भाँति विराट धनुष लिए और जलधारा रूप बाण बरसाते हुए मेघ आकाश में छा गए। सार्थ के समस्त लोग भयभीत से उसी ओर देखने लगे। बालक जिस प्रकार अधजली लकड़ी घुमा-घुमाकर भय दिखाते हैं उसी प्रकार बिजली चमक-चमक कर उन्हें डराने लगी। वर्षा की जल से उमड़ी हुई जलधारा नदी के कगारों की भाँति पथिकों के चित्त को भी भंग कर रही थी। वृष्टि के जल में ऊँची-नीची धरती एक समान हो गयी थी। सच ही तो कहा है जल जब बढ़ जाता है तो विवेक खो देता है। (दूसरा अर्थ मूर्ख उन्नति करने पर भी विवेक को प्राप्त नहीं करता।)

जल, कीचड़ और काँटों से पथ दुर्गम हो गया था। अतः एक योजन पथ अतिक्रम करने पर लगता जैसे एक सौ योजन पथ अतिक्रम कर आए हैं। मनुष्य घुटनों तक जल में इस प्रकार चल रहे थे मानो अभी-अभी कैद से मुक्त होकर आए हैं। (पावों में भारी-भारी बेड़ियाँ होने के कारण कैदी जैसे धीरे-धीरे चलते हैं।) समस्त पथ जल में इस प्रकार विस्तारित हो गया था जैसे किसी दुष्ट दैत्य ने पथिकों के पथ को अवरुद्ध करने के लिए चारों ओर अपने हाथ फैला दिए हैं। गाड़ियाँ कादे में इस प्रकार धँसने लगीं मानो रथ के चक्कों से उन्हें पीस डालने के लिए धरती ने रथ-चक्रों का ग्रास कर लिया है। ऊँटों के पैर ही नहीं उठ रहे हैं। आरोहीगण इसीलिए नीचे उतर कर उनके पैरों में रस्सी बाँधकर खींचने लगे। किन्तु कादे के कारण उनके पैर उठते ही नहीं बल्कि वे गिर-गिर जाते थे। [क्रमशः

जैन दर्शन में कर्मवाद [२]

हरिसत्य भट्टाचार्य

कर्म पुद्गल स्वरूप है, जीव-पदार्थ का विरोधी है। जीव के राग-द्वेषादि वि-भाव के कारण जीव में कर्म का-आस्रव होता है। अथवा जीव कर्म बाँधता है, ऐसा भी कह सकते हैं। राग-द्वेषादि जीव के वि-भाव, द्रव्य-कर्मास्रव के निमित्त कारण हैं। जीव के वि-भाव भाव कर्म के नाम से पहिचाने जाने पर भी द्रव्य कर्म के अर्थात् पुद्गल स्वभाव वाले कर्म के उपादान कारण नहीं है। क्योंकि पुद्गल ही पुद्गल का उपादान कारण हो सकता है। पुद्गल-विरोधी जीव-विभाव, पुद्गल का उपादान कारण किस प्रकार हो सकता है? जीव के विभाव अर्थात् भाव कर्म का उदय जीव में द्रव्य-कर्म का आश्रव कराता है, इसीलिए जीव के विभाव द्रव्य-कर्माश्रव में निमित्त कारण माने जाते हैं, और द्रव्य कर्म भी भाव कर्म में निमित्त रूप है। यह जैन सिद्धान्त है।

जीव में कर्म का आस्रव होने से जीव 'बन्ध' में पड़ जाता है।

प्रकृति-स्थित्यनुभाग-प्रदेशास्तद्विधयः। (तत्वार्थ सूत्र)

प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश भेद से बन्ध भी चार प्रकार का है। कर्मानुसार ही बन्ध का विचार किया जाता है। कर्म की प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश की दृष्टि से कर्मबन्ध की चार प्रकार से विवेचना की जा सकती है।

कर्म की प्रकृति

कर्म दो प्रकार के हैं: घाती और अघाती। जो कर्म जीव के अनन्त ज्ञानादि स्वाभाविक गुणों का घात करता है वह घाती कर्म कहलाता है। यह घाती कर्म भी ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय भेद से चार प्रकार का है। वेदनीय, आयु, नाम और गोत्र ये चार अघाती कर्म के नाम से पहचाने जाते हैं। कर्म आठ प्रकार के होने पर भी उसके अवान्तर भेद १४८ हैं।

(१) ज्ञानावरणीय कर्म जीव के पाँच प्रकार के ज्ञान को ढक लेता है। इसके पाँच भेद हैं—

(१) मति-ज्ञानावरणीय मतिज्ञान को ढके रहता है।

(२) श्रुत-ज्ञानावरणीय श्रुतज्ञान अर्थात् आगम ज्ञान को आवृत करता है।

(३) अवधि-ज्ञानावरणीय अवधि ज्ञान को ढके रहता है।

(४) मनः पर्यव-ज्ञानावरणीय अन्यों के मन के भाव पहचानने की ज्ञान शक्ति को ढके रहता है।

(५) केवल-ज्ञानावरणीय केवल ज्ञान—सर्वज्ञता को आवृत्त करता है।

(२) दर्शनावरणीय कर्म जीव के दर्शन (निर्विशेष सत्तामात्र—महासामान्य के अनुभव) को ढकता है। इसके नौ भेद हैं—

(६) चक्षुर्दर्शनावरण आँख के देखने की शक्ति का अवरोध करता है।

(७) अचक्षुर्दर्शनावरण आँख के अतिरिक्त अन्य इन्द्रियों की दर्शन शक्ति को आवृत करता है।

(८) अवधि दर्शनावरण अवधि दर्शन को आच्छादित रखता है।

(९) केवल दर्शनावरण केवल दर्शन को आच्छादित रखता है।

पाँच प्रकार की निद्रा का दर्शनावरणीय कर्म में समावेश होता है, यथा—

(१०) निद्रा।

(११) निद्रा-निद्रा—एक प्रकार की गम्भीर निद्रा।

(१२) प्रचला—एक प्रकार की तन्द्रा।

(१३) प्रचला-प्रचला—एक प्रकार की गम्भीर तन्द्रा।

(१४) स्त्यानगृद्धि—इस नींद में व्यक्ति चलता-फिरता है। पाश्चात्य मनोविज्ञान में इससे मिलता हुआ एक नाम Somnabulism है।

(३) मोहनीय कर्म—यह कर्म जीव के सम्यक्त्व और चारित्र गुण का घात करता है। दर्शन मोहनीय और चारित्र मोहनीय भेद से इसके प्रथमतः दो भेद हैं। दर्शन मोहनीय कर्म के परिणाम-स्वरूप जीव का सम्यक् दर्शन अर्थात् तत्वार्थ विषयक श्रद्धा विकृत होती है। इसके तीन प्रकार हैं—

(१५) मिथ्यात्वकर्म—अतत्व में, मिथ्या पदार्थ में जीव को श्रद्धा उत्पन्न हो जाती है।

(१६) सम्यक् मिथ्यात्व कर्म—इस कर्म के उदय से जीव को वस्तु में सम्यक् एवं मिथ्यारूप मिश्रित श्रद्धा रहती है।

(१७) सम्यक् प्रकृति (सम्यक्त्व मोहनीय)—इस गुण के उदय से जीव के सम्यक्त्व मूल गुण का घात नहीं होता, परन्तु चलमलादि दोष रहते हैं।

चारित्र मोहनीय कर्म के फलस्वरूप जीव का चारित्र गुण विकृत होता है। इसके भी नोकषाय वेदनीय और कषाय वेदनीय, ये दो भेद हैं। क्रोध, मान,

माया और लोभ को कषाय कहते हैं। उग्रता रहित कषाय, नोकषाय अथवा स्वल्प कषाय कहलाते हैं।

नोकषाय वेदनीय के नौ भेद हैं—

(१८) हास्य कषाय—इसके उदय से जीव को हास्यभाव उत्पन्न होता है।

(१९) रति कषाय—इसके उदय से जीव की पर पदार्थ में आसक्ति होती है।

(२०) अरतिकषाय—इसके उदय से जीव को परपदार्थ में विराग—नाराजी होती है।

(२१) शोक कषाय—इसके उदय से जीव को शोक होता है।

(२२) भय कषाय—इसके उदय से जीव को भय लगता है।

(२३) जुगुप्सा कषाय—इसके उदय से जीव को जुगुप्सा अथवा घृणा उत्पन्न होती है।

(२४) स्त्री-वेदकषाय—इसके उदय से पुरुष सेवन की लालसा जागृत होती है।

(२५) पुंवेदकषाय—इसके उदय से स्त्री के साथ काम सेवन की इच्छा होती है।

(२६) नपुंसक वेद कषाय—स्त्री-पुरुष दोनों के साथ काम सेवन की इच्छा होती है।

कषायवेदनीय कर्म के १६ भेद हैं। क्रोध अथवा कोप, मान अथवा गर्व माया अथवा वंचना और लोभ अथवा लोलुपता इन ४ कषायों का उल्लेख पहले किया जा चुका है। फिर, क्रोधादि के चार-चार भेद होने से कषाय वेदनीय कर्म के कुल १६ भेद हो जाते हैं।

(२७-३०) अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ कषाय के उदय से जीव के स्वरूपानुभवरूप सम्यग् दर्शन का घात होता है। जीव अनन्त संसार में भटकता है।

(३१-३४) अप्रत्याखान, क्रोध, मान, माया, लोभ कषाय के उदय से एक देश चारित्र (अणुव्रत रूप चारित्र) भी जीव के लिए असंभव हो जाय। यह कर्म अणुव्रत का रोध करता है।

(३५-३८) प्रत्याख्यान क्रोध, मान, माया, लोभ कषाय आत्मा के समस्त चारित्र का घात करता है। यह महाव्रत का विरोधी है। चारों कषायों में से कोई एक कषाय महाव्रत का अवरोध करता है।

(३६-४२) संज्वलन कषाय चतुष्टय आत्मा के यथाख्यात चारित्र का घात करता है। क्रोधादि कोई भी कषाय यथाख्यात सम्यक् चारित्र का घात करता है।

इसका वर्णन करते हुए जैनाचार्य कहते हैं कि, अनंतानुबन्धी क्रोध, पत्थरवाली भूमि में हल चलाने से पड़ी हुई और दीर्घकाल तक रहने वाली रेखा के समान, दीर्घकाल स्थायी और अपरिवर्तनीय रहता है। मिट्टी वाली भूमि में हल चलाने से पड़ी हुई रेखा के समान अप्रत्याख्यान क्रोध कषाय होता है। रेती में हल चलाने से जैसी लकीर पड़ती है उसके समान प्रत्याख्यान क्रोध-कषाय समझना चाहिए। और पानी में हलकी जैसी रेखा खींचती है वैसा संज्वलन क्रोध समझना चाहिए।

अनन्तानुबन्धी मान पर्वत के समान अचल रहता है। अप्रत्याखान मान कषाय अनन्तानुबन्धी से कुछ नरम होता है। इसकी तुलना हाड़-पिंजर से कर सकते हैं। प्रत्याख्यान मान और भी अधिक नरम होता है; लकड़ी के समान झुक जाता है। संज्वलन मान कषाय बेत के जैसा होता है।

अनन्तानुबन्धी माया बांस की जड़ों के समान कुटिल; अप्रत्याख्यान माया भैंस के सींग के समान वक्र; प्रत्याख्यान माया गो मूत्र की धारा के समान और संज्वलन माया खुरके[1] चिह्न जैसी कुटिल होती है।

अनन्तानुबन्धी लोभ खून के दाग के (कृमिरंग के) समान आसानी से न छूटनेवाला; अप्रत्याख्यान लोभ गाड़ी के पैये में लगे हुए ओंगन जैसा; प्रत्याख्यान लोभ शरीर में लगी कीचड़ के समान और संज्वलन लोभ हल्दी के लेप के समान आसानी से धुलने वाला होता है।

(४) अन्तरायकर्म जीव की दानादिक स्वाभाविक शक्ति को रोके रहता है। इसके ५ भेद हैं—

(४३) दानान्तराय दान (त्याग) करने की इच्छा का घात करता है।

(४४) लाभान्तराय लाभ में बाधा पहुँचाता है।

(४५) भोगान्तराय भोग्य वस्तु का भोग न करने दे। जीव विषय-भोग का प्रयत्न करता है, परन्तु इस कर्म के उदय से भोग मार्ग कंटकमय बन जाता है। जिस विषय का एक ही बार भोग हो सकता है उसे भोग कहते हैं, यथा आहार, जल, मुखवास आदि।

(४६) उपभोगान्तराय उपभोग्य वस्तु के उपभोग में विघ्न डालता है।

---

[1] अवलेखनी—बाँस की छाल के समान वक्र होती है। (तत्वार्थ सूत्र)

जिस वस्तु का अनेक बार उपभोग हो सकता है उसे उपभोग्य कहते हैं, यथा वस्त्र, वाहन, आसन आदि।

(४७) वीर्यान्तराय जीव के वीर्य, सामर्थ्य अथवा शक्ति को विकसित नहीं होने देता।

घाती कर्म के ये ४७ भेद हुए। घाती कर्म जीव के स्वाभाविक ज्ञान, दर्शन, श्रद्धा, चारित्र, वीर्य आदि गुणों को ढके रहता है। अघाती कर्म जीव के स्वाभाविक गुणों का लोप नहीं करता। अघाती कर्म केवल शरीर से सम्बन्ध रखता है। वेदनीय, गोत्र, आयु और नाम ये चारों अघाती कर्म हैं।

(५) वेदनीय कर्म सुख, दुःख की कारणभूत सामग्री उत्पन्न करता है। इसके दो भेद हैं—

(४८) शातावेदनीय सुख साधनों की प्राप्ति में सहायक होता है।

(४९) अशातावेदनीय दुःख के साधनों की उत्पत्ति में कारणभूत होता है।

(६) गोत्रकर्म—किस प्रकार के वंश में जन्म हो, इसका आधार गोत्रकर्म है। इसके भी दो भेद हैं—

(५०) उच्च गोत्र—इसके प्रताप से जीव उच्च गोत्र में जन्म लेता है।

(५१) नीच गोत्र—इस कर्म के बल से जीव नीच कुल में जन्म लेता है।

(७) आयुष कर्म—यह कर्म जीव की आयु निर्धारित करता है। नारकी, तिर्यंच, देव या मनुष्य का भव प्राप्त करना इस कर्म के आश्रित है। इसके चार भेद हैं—

(५२) देवायुष—इसके उदय से जीव को देवता का आयुषकाल प्राप्त होता है।

(५३) नारकायुष—इसके उदय से जीव नरकवासी की आयु प्राप्त करता है।

(५४) मनुष्यायुष—इस कर्म के प्रताप से जीव को मनुष्य की आयु मिलती है।

(५५) तिर्यंगायुष—इस कर्म के कारण जीव तिर्यंच जाति की आयु पाता है।

(८) नाम कर्म—यह कर्म जीव की गति, जाति, शरीरादि में कारण भूत होता है। गति, जाति, शरीरादि के भेद से नाम कर्म के कुल ९३ भेद होते हैं—

प्रथम गति कर्म—इससे जीव की संसारगति निश्चित होती है। गति के ४ प्रकार हैं—

(५६) नरकगति—इसके उदय से जीव नारकी शरीर धारण करता है।

(५७) तिर्यंचगति—इसके उदय से जीव को पशु-पक्षी आदि तिर्यंच गति मिलती है।

(५८) मनुष्यगति—इसके उदय से जीव मनुष्य-शरीर प्राप्त करता है।

(५९) देवगति—इसके उदय से जीव को देव शरीर मिलता है।

द्वितीय जातिकर्म—यह जीव की जाति निर्धारित करता है। जाति के पाँच भेद हैं—

(६०) एकेन्द्रिय जाति—एकेन्द्रिय जातिकर्म के उदय से जीव एकमात्र स्पर्शनेन्द्रिय प्राप्त करता है।

(६१) द्वि-इन्द्रिय जाति—इसके उदय से जीव स्पर्श और रसना ये दो इन्द्रियाँ प्राप्त करता है।

(६२) त्रि-इन्द्रिय जाति—इसके उदय से जीव स्पर्श, रसना और घ्राण ये तीन इन्द्रियाँ प्राप्त करता है।

(६३) चतुरिन्द्रिय जाति—इस कर्म के उदय से जीव स्पर्श, रसना, घ्राण और चक्षु ये चार इन्द्रियाँ प्राप्त करता हैं।

(६४) पंचेन्द्रिय जाति—इसके उदय से जीव को पाँच इन्द्रियाँ प्राप्त होती हैं।

तीसरा शरीर कर्म—इससे जीव का शरीर निर्दिष्ट होता है। शरीर के पाँच प्रकार हैं, इसलिए शरीर कर्म भी पाँच प्रकार का होता है।

(६५) औदारिक शरीर— इसके उदय से जीव को मनुष्य और तिर्यंच का स्थूल शरीर मिलता है।

(६६) वैक्रियक शरीर—जिसे छोटा या बड़ा किया जा सके उसे वैक्रियक शरीर कहते हैं। इस कर्म के उदय से जीव देव तथा नारकी का वैक्रियक शरीर प्राप्त करता है।

(६७) आहारक शरीर[२]—छठे गुण स्थान वाले मुनि को यदि तत्वार्थ

---

२ आहारक-शरीर-नाम कर्म—श्वेताम्बर सिद्धान्तानुसार चौदह पूर्वधर मुनि को तत्वार्थ सम्बन्धी कोई शंका उत्पन्न हो या तीर्थंकर के दर्शन की इच्छा हो तो वह शंका समाधान के लिए या दर्शन के लिए, महाविदेह क्षेत्र में स्थित तीर्थंकर के पास भेजने के लिए इस कर्म के उदय से, एक हाथ प्रमाण शरीर बनाता है। कार्य पूर्ण होने पर वह कर्पूर के समान विलीन हो जाता है।

सम्बन्धी कोई शंका उत्पन्न हो तो शंका का समाधान करने के लिए वह केवलज्ञानी या श्रुतकेवली के पास भेजने के लिए, इस कर्म के उदय से मस्तक में से एक हाथ प्रमाण वाला शरीर उत्पन्न कर सकता है। शंका समाधान होने पर यह शरीर पुनः स्थूल शरीर में समा जाता है।

(७९) तैजस शरीर[3]—इस कर्म के उदय से औदारिक और वैक्रियक शरीर को कान्ति देनेवाला शरीर प्राप्त होता है।

(८९) कार्मण शरीर—इसके उदय से कर्म-पुद्गलसंघटित कर्म-शरीर उत्पन्न होता है।

चतुर्थ अंगोपांगकर्म—इससे जीव शरीर के अंगोपांग की योजना होती है। तीन प्रकार के शरीर के अंगोपांग कर्म भी तीन प्रकार के होते हैं—

(७०) औदारिक—इसके उदय से औदारिक शरीर के अंगोपांग होते हैं।

(७१) वैक्रियक—इसके उदय से वैक्रियक शरीर के अंगोपांग बनते हैं।

(७२) आहारक—इसके उदय से आहारक शरीर के अंगोपांग बनते हैं।

(७३) पंचम निर्माणकर्म—इस कर्म से शरीर के अंग और उपांग यथा-स्थान यथा-परिमाण व्यवस्थित होते हैं।

छठा बन्धन कर्म शरीर के औदारिक परमाणुओं (छोटे-से-छोटे अंशों) को एक दूसरे के साथ यथोचित रूप से संयुक्त करता है। शरीर पाँच प्रकार का है, इसलिए बन्धन कर्म भी पाँच प्रकार के होते हैं।

(७४) औदारिक बन्धन कर्म।

(७५) वैक्रियक बन्धन कर्म।

(७६) आहारक बन्धन कर्म।

(७७) तैजस बन्धन कर्म।

(७८) कार्मण बन्धन कर्म।

सप्तम संघात कर्म—इसके कारण शरीर का छोटे से छोटा भाग भी परस्पर सम्बद्ध रहता है। शरीर के समान संघात कर्म भी पाँच प्रकार का है—

(७९) औदारिक संघात कर्म।

(८०) वैक्रियक संघात कर्म।

(८१) आहारक संघात कर्म।

---

[3] तैजस-शरीर-नामकर्म—इस कर्म के उदय से आहार पाचन हो और तेजो-लेश्या छोड़ने में सहायक हो ऐसा शरीर होता है।

(८२) तैजस संघात कर्म।

(८३) कार्मण संघात कर्म।

अष्टम संस्थान कर्म[४]—इससे शरीर की आकृति की योजना होती है। यह कर्म छः प्रकार का होता है—

(८४) समचतुरस्रसंस्थान—इस कर्म से शरीर सुडौल—सुगठित होता है।

(८५) न्याग्रोधपरिमंडल संस्थान—इस कर्म के कारण न्याग्रोध (वट) वृक्ष जैसा शरीर बनता है। अर्थात् शरीर का नीचे का भाग छोटा-कुबड़ा और ऊपर का भाग बड़ा तथा सुडौल होता है।

(८६) स्वातिक संस्थान—इससे न्याग्रोध परिमंडल की अपेक्षा अन्य ही प्रकार की आकृति होती है।

(८७) कुब्जक संस्थान—इसके उदय से कूब वाला शरीर मिलता है।

(८८) वामन संस्थान—इसके उदय से छोटा (ठिंगना) शरीर मिलता है।

(८९) हुण्डक संस्थान—इसके उदय से शरीर के अंगोपांग छोटे-बड़े होते हैं, परस्पर मेल नहीं खाते और शरीर का आकार कुरूप बनता है।

---

[४] श्वेताम्बर मतानुसार शरीर के आकार में संस्थान नाम कर्म कारण है।

समचतुरस्र संस्थान नाम कर्म—इस कर्म से शरीर के समग्र अवयव लक्षणयुक्त तथा सुडौल होता।

न्याग्रोधपरिमंडल संस्थान—इस कर्म से वट वृक्ष के समान नाभि के ऊपर का भाग लक्षणों से युक्त तथा सुडौल होता है और नाभि के नीचे का भाग लक्षणहीन होता है।

सादि संस्थान—इस कर्म से शाल्मली वृक्ष के समान नाभि से नीचे का भाग सुडौल और ऊपर का भाग लक्षण-रहित होता है।

कुब्ज संस्थान—इस कर्म से मस्तक, गर्दन, हाथ, पैर सुडौल होते हैं, अन्य अवयव ऐसे नहीं होते।

वामन संस्थान—इस कर्म से मस्तकादि उपरोक्त अवयव लक्षणहीन और शेष अवयव सुडौल होते हैं।

हुण्ड संस्थान—इससे शरीर का प्रत्येक अवयव लक्षणहीन होता है।

नवम् संहननकर्म [५]—इसका सम्बन्ध अस्थिपंजर की रचना से है। यह कर्म ६ प्रकार का है। वर्तमान समय में अन्तिम तीन प्रकार ही देखे जाते हैं—

(९०) वज्रऋषभनाराच संहनन—इसके उदय से शरीर की नाड़ी, ग्रन्थि और अस्थि वज्र जैसी कठिन होती है।

(९१) वज्रनाराच संहनन—इसके उदय से केवल ग्रन्थि और अस्थि वज्र सदृश कठिन होती है।

(९२) नाराच संहनन—इसके उदय से वज्रऋषभनाराच की अपेक्षा दुर्बल प्रकार का संघात इत्यादि होता है।

(९३) अर्धनाराच संहनन—इसके उदय से नाराच की अपेक्षा दुर्बल प्रकार का संघात इत्यादि होता है।

(९४) कीलक संहनन—इसके उदय से अस्थियां ग्रन्थिवाली बनती है।

---

[५] श्वेताम्बर मतानुसार अस्थिसंघटन में संघयण नामकर्म कारण है।

वज्रऋषभ नाराच संघयण (संहनन)—जैसे दो पदार्थों का मजबूत बंधन हो, उसके ऊपर पट्टी हो और उसपर कील लगी हो, तो इससे वह बन्धन जिस प्रकार मजबूत होता है, उसी प्रकार का मजबूत अस्थि का बन्धन (संघटन) इस कर्म से दृढ़ होता है।

ऋषभनाराच संघयण—पट्टी के बिना जैसे बन्धन होता है वैसा ही अस्थि का बन्ध (संघटन) इस कर्म से होता है।

नाराच संघयण—पट्टी और कील रहित बन्धन के समान अस्थियों का संघटन इस कर्म से होता है।

अर्धनाराच संघयण—जिस प्रकार दो पदार्थों में एक ओर गाढ़ बन्धन हो और दूसरी ओर शिथिल हो, अस्थिका उसी प्रकार का संघटन इस कर्म से होता है।

कीलिका संघयण—जिस प्रकार दो पदार्थों में दोनों ओर शिथिल बन्धन हो परन्तु कील के समान कोई वस्तु लगी हो, उसी प्रकार का अस्थि संघटन होने में यह कर्म कारण रूप है।

सेवार्त संघयण—अस्थियों का बिलकुल शिथिल संघटन होने में यह कर्म कारण रूप होता है। आजकल यही संघयण देखा जाता है।

(९५) असंप्राप्तासपाटिका—इसके उदय से शिरासंयुक्त अस्थि बनी रहती है।

दशम स्पर्श कर्म—इससे शरीर की स्पर्श-शक्ति बनती है। स्पर्श कर्म आठ प्रकार का होता है—

(९६) जिसके उदय से उष्ण स्पर्शवाला शरीर बनता है।

(९७) जिसके उदय से शीत स्पर्शवाला शरीर बनता है।

(९८) जिसके उदय से स्निग्ध स्पर्शवाला शरीर बनता है।

(९९) जिसके उदय से रूक्ष स्पर्शवाला शरीर बनता है।

(१००) जिसके उदय से मृदु स्पर्शवाला शरीर बनता है।

(१०१) जिसके उदय से कर्कश स्पर्शवाला शरीर बनता है।

(१०२) जिसके उदय से लघु स्पर्शवाला शरीर बनता है।

(१०३) जिसके उदय से गुरु स्पर्शवाला शरीर बनता है।

ग्यारहवाँ रसकर्म—इसके कारण विविध रसयुक्त शरीर बनता है। रसकर्म पाँच प्रकार का है—

(१०४) तिक्त रसकर्म—जिसके उदय से शरीर में तिक्त रस उत्पन्न होता है।

(१०५) कटु रसकर्म—जिसके उदय से शरीर में कटु रस की उत्पत्ति होती है।

(१०६) कषाय रसकर्म—जिसके उदय से शरीर में कषाय रस की उत्पत्ति होती है।

(१०७) अम्ल रसकर्म—जिसके उदय से शरीर में अम्ल रस उत्पन्न होता है।

(१०८) मधुर रसकर्म—जिसके उदय से शरीर में मधुर रस उत्पन्न होता है।

बारहवाँ गंधकर्म—इससे शरीर में गन्ध उत्पन्न होती है। गंधकर्म के दो भेद हैं—

(१०९) सुगन्धकर्म—इसके उदय से शरीर सुगंधवाला रहता है।

(११०) दुर्गन्धकर्म—इसके उदय से शरीर दुर्गन्ध वाला रहता है।

[क्रमशः

जैन पत्र-पत्रिकाएँ : कहाँ/क्या

अमर भारती ।। अगस्त १९८१

उपाध्याय श्री अमर मुनि के प्रवचनों के अतिरिक्त इस अंक में है 'मौन अध्याय' (साध्वी श्री विभा), 'मानसिक तनाव : कारण और निवारण' (युवाचार्य महाप्रज्ञ), 'भगवान महावीर : एक अद्भुत चिन्तक' (मालचन्द जैन), 'भारतीय संस्कृति में तप-साधना' (डा० सागरमल जैन)।

कुशल-निर्देश ।। जुलाई १९८१

इस अंक में है 'उपास्यपदे उपादेयता' (श्री सहजानन्दघनजी महाराज, अनु० भँवरलाल नाहटा), 'द्वितीय जिह्व तिष्यगुप्त' (डा० रमणलाल चिमनलाल शाह, अनु० भँवरलाल नाहटा), 'मूर्तिपूजा की प्राचीनता और उपयोगिता' (अगरचन्द नाहटा), 'मुख्य धार्मिक प्रेरक ग्रन्थ और उनकी उपादेयता' (राम स्वरूप), 'जैन धर्म में अहिंसा' (सज्जन जैन)।

जैन जर्नल ।। जुलाई १९८१

इस अंक में है 'Cognizances on the Images of Tirthankaras' (Umakant P. Shah), 'Sasanka, the Enemy and Oppoesor of Jainism' (Chittaranjan Pal), 'Previous Births of Rsabhadeva' (Manjula Mehta), 'A Unique Image of Rsabhanatha in the State Museum, Lucknow' (Maruti Nandan Prasad Tiwari), 'A Caturvimsati Patta of Rsabhanatha from Koraput' (Umakanta Subuddhi), 'Paryusana' in Leicester, 1980' (R.Kleifgen), 'Guru' (Witold L. Langrod).

जैन सिद्धान्त भास्कर । The Jaina Antiquary ।। जुलाई १९८१

इस अंक में है 'श्री कृष्ण विषयक जैन साहित्य' (डा० ज्योति प्रसाद जैन), 'समन्तभद्र स्वामी का आयुर्वेद ग्रन्थ कर्तृत्व' (राजकुमार जैन), 'सीता-हरण के विविध प्रसंग' (गणेश प्रसाद जैन), 'महान् सारस्वत अभियान' (डा० ज्योति प्रसाद जैन), 'भण्डारी नेमीचन्द और उनके षष्टिशतक् की टीकायें' (अगरचन्द नाहटा), 'श्री सम्मेद शिखर तीर्थ और जैन' (उमानाथ श्रीवास्तव),

'मौलवी सैयद अब्दुल गणी के बनाये जैन चित्र' (सुबोध कुमार जैन), 'Ahimsa as a Political Force in Indian History' (Dr. Jyoti Prasad Jain), 'Jaina Authors and Their Works' (Dr. Jyoti Prasad Jain), 'On the Principle of Conception of Clouds in Bhagavati Sutra' (Dr. Sajjan Singh Lishk and Dr. S. D. Sharma), 'Bhadrabahu Svami and Samrat Chandragupta' (M. D. Vasanthraj).

तीर्थंकर ॥ अगस्त १९८१

सम्पादकीय के अतिरिक्त इस अंक में है 'आकिंचन्य : तर्क, वितर्क, कुतर्क' (सुरेश सरल), बातचीत : 'जन्मना नहीं कर्मणा जैन बनें' (आचार्य तुलसी, युवाचार्य महाप्रज्ञ, कमलेश चतुर्वेदी, डा० नेमीचन्द जैन) ; 'फिल्मी दुष्प्रभाव से बचें' (निहाल अजमेरा, डा० नेमीचन्द जैन), 'नैतिक बने : ढोंग से बचे' (घूरनचन्द जैन, डा० नेमीचन्द जैन) ।

तुलसी प्रज्ञा ॥ जून-जुलाई १९८१

आचार्य श्री तुलसी के प्रवचनों के अतिरिक्त इस अंक में है 'रिष्टसमुच्चय में आयुर्वेद सम्बन्धी विषय' (राज कुमार जैन), 'जैन ललितकला' (साध्वी श्री कानकुमारी), 'आयरो : हिन्दी पद्यानुवाद' (मुनि श्री मांगीलाल 'मुकुल'), 'Points of Resemblence between Jaina and Buddhist Traditions' (Dr. Jyoti Prasad Jain), 'Progress of Psychical Research' (Budhmal Samsukha), 'Jaina Technical Terms' (Dr. Mohan Lal Mehta).

श्रमण ॥ अगस्त १९८१

इस अंक में है 'जैन दर्शन में अनेकान्तवाद का स्वरूप' (भिखारीराम यादव), 'जैन कवि विक्रम और उनका नेमिदूत काव्य' (रविशंकर मिश्र), 'जैन दर्शन और मार्क्सवाद, सत का स्वरूप' (हरि ओउम् सिंह), 'समता का देवता' (डा० आदित्य प्रचण्डिया) ।

Vol. V No. 5 : Titthayara : September 1981
Registered with the Registrar of Newspapers for India
under No. R. N. 30181/77

Hewlett's Mixture

for

Indigestion

DADHA & COMPANY

and

C. J. HEWLETT & SON (India) PVT. LTD.

22 STRAND ROAD

CALCUTTA-700001